Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SHISRRJ | Volume 1 | Issue 4 | ISSN : 2581- 6306

समकालीन कला : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ.संतोष बिंद
प्रवक्ता, राजकीय बालिका इंटर कॉलेज,
हुसैनगंज, फतेहपुर, उत्तर प्रदेश,भारत।

सारांश–'आधुनिक कला समीक्षकों ने बहुधा एक आशंका व्यक्त की है कि आधुनिकता के निरन्तर बढ़ने प्रभाव से लोक कलाएँ टूटने की स्थिति में है। इस सन्दर्भ में दो तथ्य बिल्कुल स्पष्ट है, पहला यह कि लोककला में अद्‌भुत जीवनीशक्ति होती है इसी से वह अतीत के इतिहास में टिकी रहती है और आज तक जीवित है और दूसरा यह कि उसका मानव मन से सहज रिश्ता है तथा लोक 'जीवन से अभिन्नता' का, मेरी समझ में ये दोनों शक्तियाँ इतनी अमिट है कि लोक कलाओं के विनष्ट होने का खतरा एक कल्पना सी लगती है जब तक लोक है, लोक संस्कृति है और लोकमूल्य है।

मुख्य शब्द–समकालीन, कला, आधुनिक, इतिहास,मानव, शिल्प, लोक,संस्कृति।

भारतीय आधुनिक कला धारा पर प्रारम्भ से ही विदेशी विचारों कला–आन्दोलनों का प्रभाव रहा है। समकालीन कला में भी आज भी अनेकों प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिनमें विदेशी कला आन्दोलनों की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है 'विदेशी कला रूपों के प्रभाव से नई रूप रचना तो हुई परन्तु उसके यथार्थ तक नहीं पहुँच पायी। नये भारत ने अपनी सांस्कृतिक सीमाएँ संसार के लिए खोल दी और हम विदेशी चमक दमक से ग्रसित होकर कला रचना करते चले आ रहे हैं। हम अपने आपको तभी पहचान पाएँगे जब हम अपनी संस्कृति और उसमें निहित सौन्दर्य तत्व की स्वयं अनुभूति करेंगे।'[1]

'बदलते हुए समय के साथ सबकुछ बदलता है– मूल्य, मान, नैतिकता, श्रद्धा, दृष्टि, आंकाक्षा, विश्वास और स्वयं हम आप भी ऐसे में कलाकार भी बदलता है और उसकी कला भी।..... सृजन की जगह तकनीक ने ले ली हैं तरह–तरह के प्रयोग हो रहे हैं।'[2] 'दरअसल पाश्चात्य कला वहाँ के कलाकार की पीड़ाओं का ही परिणाम है, जबकि पूर्व की कला यहाँ के कलाकार के अतीव आनन्द से उपजी है जाहिर है,

समकालीन कला वह नहीं हो सकती जो आज से उपजी है। समकालीन कला वह नहीं हो सकती जो आज से शताब्दियों पहले थी। यह ध्यान रखने की बात है कि भारतीय कला जगत में वे ही कलाकार मजबूती से खड़े हो सकते हैं जो समाज और कला की इन नई–नई चुनौतियों को स्वीकार करने की क्षमता भी रखते हैं। साथ ही अपने परम्परागत कला–सौन्दर्य और उसके गौरव को भी मजबूती से पकड़कर रख सकने की सामर्थ्य भी रखते हों।'[3]

'कुछ लोगों के मुख से आज यह बात सुनने को मिलती है कि पुरातन का सर्वथा बहिष्कार होना चाहिए। पुरातन की अनुकृति के बहिष्कार की बात तो समझ में आती है, किन्तु परातन के बहिष्कार की बात कुछ अलग ही अर्थ लगाती है। इस प्रकार की बातें कहने वाले लोगों का चाहे जो भी उद्देश्य रहा हों, किन्तु इस सम्बन्ध में इतना जान लेना आवश्यक है कि कला अतीत की उपलब्धियों की पुनरावृत्ति मात्र या अनुकरण मात्र नहीं होती। वह तो अतीत के गौरव को सहेज कर उसके मौलिक तत्वों को लेकर उसको युग के अगले चरणों से जोड़ती है। युग परिवर्तन के अनुसार पुराने छन्द, पुराने भाव, विधान और पुरानी भाषा शैली को वह सर्वथा उतार नहीं फेंकती, बल्कि उसमें नयी गति, नयी विधि और नया संगीत भरकर उसे युग के अनुसार ढालती है... प्राचीन को पूर्वाग्रह या अतिवादिता समझकर यदि हम उसका सर्वथा बहिष्कार कर देते हैं, तो हमारे पास फिर बचा ही क्या रह जाता है? ऐसा करने से तो प्रत्येक पीढ़ी को अपना नया इतिहास बनाना पड़ेगा और वस्तुतः जिससे कि कभी भी इतिहास का निर्माण न हो सकेगा।''[4]

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि समकालीन भारतीय कला ने अपनी पहचान बनाई है। 'लेकिन आज राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर जो चुनौतियाँ हमारे सामने है, यह सच है, वैसी चुनौतियाँ हमारे अपने परिवेश में निकट अतीत में पहले नहीं रहीं। इन्हें ठीक ठाक समझने और उनसे निपटने के लिए हमें कला और संस्कृति के और अधिक सार्थक सानिध्य की जरूरत है।[5]

'यह इक्कीसवीं शताब्दी की शुरूआत है। इस समय कला के मुहावरे पूरी तरह से बदल गये है, कला के मान और मूल्य बदले हैं तो उसकी नैतिकता भी बदली है। अब कला के प्रति हमारे नजरियें में भी बदलाव आया है और उसको जाचने परखने की दृष्टि भी प्रभावित हुई है। ऐसे में कला जनता के कितनी निकट रह गई है, यह एक स्तर हो सकता है, विचार विमर्श का। विमर्श का दूसरा स्तर यह हो सकता है कि इतनी आपाधापियों के बीच में वह कौन से कलारूप है, जो जनता में अधिक निकट बने हुए है।[6]

'समकालीन कला वस्तुतः बीसवीं शताब्दी की उत्तेजक गतिविधियों व वैचारिक क्रान्ति की द्योतक है। आज कलाकार ने कला को पूर्णतः तकनीकी व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा है, यही कारण है कि दर्शक की सक्रिय भागीदारी कलाकार की अनुभूति व कला से नहीं हो पाती फिर भी आज कला में विस्तृत विविधता, नवीन खोजों व बोद्धिकता को नहीं नकारा जा सकता। आज कला सभी विधाएँ चित्रकला, मूर्तिकला, व्यवहारिक कला, ग्राफिक कला आदि में सह अस्तित्व है, इन केन्द्रों के कला परिदृश्यों का प्रभाव सम्पूर्ण

विश्व पर पड़ा। किन्तु यह दुविधापूर्ण व खेदजनक स्थिति है कि नवीन संवेदनाओं के साथ नवीन प्रयोगों को अपनाते हुए समकालीन जीवन का प्रतिबिम्ब होते हुए भी समकालीन कला जीवन का अंग नहीं बन सकी है। हाँ, प्रयास अवश्य जारी है जिसमें तथाकथित उच्च व्यवसायी व बौद्धिक वर्ग को समकालीन कला की समझ; मूल्य एंव महत्व का बोध है'[7] यदि जनसाधारण तक पहुँच कर समकालीन कला उनके जीवन का अंग बने तो कला का मुख्य उद्देश्य पूरा होता है।

'समसामयिक कला के सन्दर्भ में एक विचारणीय प्रश्न का भी है। साधारणतः कला का प्रयोजन मानसिक सुख–शान्ति, आनन्द व नवीन सौन्दर्य की उत्पत्ति करना है, किन्तु समसामयिक कला के ये तत्व मात्र एक वर्ग विशेष को ही प्रभावित करते हैं तथा साधारण व्यक्ति इनका आनन्द नहीं ले पाता। अर्थात् समसामयिक कला से वह तादात्मय स्थापित नहीं कर पाता इसका प्रमुख कारण है समसामयिक कलाकृतियों में वैज्ञानिकता एवं उच्च बौद्धिकता का समाहार होना। इस कला को वही परख सकता है जिसका बौद्धिक स्तर कलाकार के बौद्धिक स्तर से मेल खाता हो।'[8] साधारण जन तो इन कलाओं की गूढ़ विचारधारा से सामन्जस्य बैठाने में असमर्थ है। परन्तु 'पिछले पच्चीस तीस वर्षों से भारतीय चित्रकला का परिदृश्य काफी कुछ बदल गया है। आज की चित्रकला पाश्चात्य प्रभाव से अपने को मुक्त करने की एक सतत प्रक्रिया से गुजर रही है साथ ही यह भी कहना होगा कि उसने अपनी खिड़कियाँ खुली रखी है और कहीं से भी जब खुशगवार हवा का झोंका आता है वह उसे आत्मसात करती है, लेकिन उस हवा में बह नहीं जाती। अपने को अपनी जमीन से उखाड़ने नहीं देती हैं।[9] स्वयं की पचान के लिए अपनी जमीन और अपनी जड़ों से जुड़े रहना आवश्यक है।

''भारतीय कलाकार अगर विदेश में ही विस्तार खोजते हैं तो भ्रम में है। भारतीय कलाकार को भारत का ही होना होगा। यहीं पर उसको दर्शक खोजने होंगे। उसको अपने भावात्मक जीवन को उसी वातावरण में जोड़ना होगा जो उसे पुनर्जीवन प्रदान कर सके और जो रचनात्मक हो। उसको अपने वर्तमान कष्टों और असफलताओं को सहना होगा।'[10] असफलताओं के बाद ही नया उदय होगा, नयी खोज होगी।

'एक तरफ नयापन आना, वैचारिक स्तर का विस्तार होना, नयी दिशा के द्वार खुलना, निश्चय ही शुभ लक्षण है। सर्जना के लिए उत्साहवर्धक भी है। दूसरी तरफ अपने परम्परागत अनुशासन की पकड़ ढ़ीली पड़ने से विकृतियों की अभिव्यक्ति निरंकुश होती गयी है। सत्यं शिवं सुन्दरम् की हमारी अवधारणा ऐसी ही परिस्थिति में धूमिल पड़ती नज़र आती है।'[11] 'वैसे भी यह कम दुखद नहीं है कि आजादी के बाद से देश में कोई ऐसी कलाशैली विकसित नहीं हो सकी जिसे दुनिया के सामने आधुनिक भारतीय कलाशैली के रूप में परोसा या जाना जा सके';[12] किसी दूसरे देश की कला शैलियों से अत्यधिक प्रभावित कला को मौलिक कला नहीं कहा जा सकता। फिर भी अधिकतर कलाकार यही कहते हैं कि उनकी रचना मौलिक है। किसी भी

शैली या कलाकार का उन पर प्रभाव नहीं है पर उनकी यह रचनाएँ देश की माटी की गंध से दूर दिखाई पड़ती है।

'अपनी संस्कृति को विश्व स्तर पर जब हमें निरूपित करना होता है, प्रोजेक्ट करना होता है तब अपने मानक के रूप में अजन्ता, ऐलोरा, खजुराहो अथवा कोर्णार्क को ही सामने रखते हैं। उस समय वस्तर का डोगरा, विष्णुपुर का घोड़ा और मधुबनी की चित्रकारी को भी हम याद करते हैं। पुरूलिया या छऊ नृतय, गुजरात का दांडिया, पंजाब का भांगड़ा, राजस्थान की गुलाबों और मध्य प्रदेश की तीजनबाई को ही दिखाकर हम अपना स्वरूप उपस्थित करते हैं। अपनी शास्त्रीयता के प्रदर्शन में कथकली और भरतनाट्यम् भी दिखाना नहीं भूलते' आखिर ऐसा क्यों? आज भी हमारी वही पहचान है ऐसे में गर्व होता है अपने धरोहर अपनी परम्परा पर कि आज भी वह कितना प्रासंगिक है।'[13]

'आज जरूरत है अपने रचना संसार को अतीत में जाने की अपनी धरोहर को फिर से समग्रता में देखने की। उन संस्कृति कर्मियों और उन लोक कलाकारों को अपने वर्तमान के साथ सही मायने में जोड़ने की। ऐसा नहीं होने से हमारे पांव उखड़ जाएगें और हमारा आज का वर्तमान, भविष्य में कितना प्रासंगिक रह जाएगा सोचने की बात है।''[14]

'भारत कला–प्रतिभा की दृष्टि से एक समृद्ध देश है यहाँ चित्रकारों की जमात के अतिरिक्त गृह–उद्योगों एवं शिल्प के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षा एवं कलाकारों का स्तर भी इतना उन्नत है कि उन्हें ललित कलाओं (फाइन–आर्ट्स) के क्षेत्र में स्थान दिया जा सकता है। उच्च स्तर के चित्रकारों को तैयार करने की दृष्टि से भारतीय कला की जमीन अत्यन्त उर्वरक है, परन्तु प्रतिभाओं को परिपक्व आधार देने की आवश्यकता है क्योंकि हमारे देश में परिपक्वता का आज भी गहरा अभाव खटकता है।'[15]

बहुत सी समकालीन रचनाएँ विदेशी शैलियों की नकल सी लगती है फिर भी अनेकों प्रतिष्ठित समकालीन कलाकार ऐसे भी है जिन्होंने भारतीय कला को अपनी पहचान दिलाई है, जिसमें भारतीय संस्कृति, कला, परम्परा की जड़े मौजूद है 'भारत की कला सम्पदा को लेकर हम गौरव का अनुभव करते हैं। इसमें एक तरफ जहाँ लोक कलाकारों द्वारा जीवन की सीधी सादी अनपढ़ किन्तु सरस और पारदर्शी अभिव्यक्ति हुई है, वही दूसरी तरफ शास्त्रीयता की गुरूता और उसका अपना अनुशासन भी है, इन दोनों कगारों के बीच विविध रचना शैलियाँ पनपी–पसरी हैं जिनका अलग–अलग चेहरा है, अपने–अपने रंग विधान है और अपनी–अपनी सोच है। फिर भी, सबके बीच एक ऐसा चारित्रिक साम्य है जिससे भारतीयता की पहचान बनती है।'[16]

'कला रूप के दृश्य तत्व के पीछे एक गहरा आत्मिक आयाम होता है, यद्यपि कला को सार्वभौमिक भाषा कहा जाता है जो रंग, रेखा, लय, सामंजस्य एवं सन्तुलन के माध्यम से बात करती है। परन्तु वह भी सच है कि कला को उसके रचनाकर्ताओं से पृथक नहीं किया जा सकता। प्रत्येक सांस्कृतिक समूह के लिए

वह भाषा पृथक–पृथक रहती है। एक संस्कृति की रचनाएँ दूसरी संस्कृति द्वारा सृजित नहीं की जा सकती क्योंकि श्रेष्ठ कला में विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा भी होती है तथा उस संस्कृति की उत्कृष्ट कलात्मकता प्रदर्शित होती है।'[17]

'प्रासंगिकता का भी एक इतिहास है। अनेक कलासमीक्षकों ने स्वीकार किया है कि अजन्ता के भित्ति चित्र ग्रामीण कल्पना के नमूने लेकर तैयार किये गये है। जैन बौद्ध और अपभ्रंश शैली के चित्रों में लोककला की थाती सुरक्षित है। राजपूत शैली के चित्रों में लोककला का थाती सुरक्षित है। राजपूत शैली एक परिष्कृत–लोककला है। आधुनिक कलाकार जैसे रवीन्द्र नाथ टैगोर, नन्द लाल बसु, यामिनी राय आदि लोक कला से प्रेरित और प्रभावित रहे हैं। यही बात आधुनिक संदर्भों में भी लागू होती है।'[18] 'किसी स्कूल अथवा किसी नामधारी शैली से जुड़े बिना ही स्वतंत्र भाव से श्री गणेश पाल, प्रो0 गुलाब शेख, धर्म नारायण दास गुप्ता, रामानन्द बन्दोपाध्याय, जानकी राम और लकड़ी की एक श्रृंखला में प्रो0 महेन्द्र पाण्डेय तथा पट्चित्रों से जुड़ी हुई शृंखला को लेकर प्रो0 के0जी0 सुब्रमन्यम प्रभृति समसामयिक कलाकारों ने इस दिशा में गणेश हालुई ने जो संरचनाएँ की है, वे पूरी तरह नई प्रवृत्ति की दृश्यचित्रावली होने के साथ–साथ भारतीयता की सुगन्ध से भरी हुई है। उन रचनाओं को देखकर लगता हैं कि अपनी धरोहर सही मायने में आज भी पूरी तरह प्रासंगिक है।[19]

'आधुनिक कला समीक्षकों ने बहुधा एक आशंका व्यक्त की है कि आधुनिकता के निरन्तर बढ़ने प्रभाव से लोक कलाएँ टूटने की स्थिति में है। इस सन्दर्भ में दो तथ्य बिल्कुल स्पष्ट है, पहला यह कि लोककला में अद्‌भुत जीवनीशक्ति होती है इसी से वह अतीत के इतिहास में टिकी रहती है और आज तक जीवित है और दूसरा यह कि उसका मानव मन से सहज रिश्ता है तथा लोक 'जीवन से अभिन्नता' का, मेरी समझ में ये दोनों शक्तियाँ इतनी अमिट है कि लोक कलाओं के विनष्ट होने का खतरा एक कल्पना सी लगती है जब तक लोक है, लोक संस्कृति है और लोकमूल्य है। तब तक लोक कलाएँ अमर रहेंगी, इसमें कोई संदेह नहीं। लोक भाव, लोकवस्तु और लोकशैली में परिवर्तन हो सकते हैं लेकिन कलाओं में ऊर्जा की ऐसी संजीवनी है जो उन्हें हमेशा जीवित रखेगी।'[20] इसी संजीवनी ने भारतीय समकालीन कलाकार का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। आज तक के भौतिक जीवन की आपाधापी से दूर कलाकार शान्त, निश्छल, शाश्वत, जीवन के अत्यधिक निकट लोककलाओं में व्याप्त रचना संसार को जीना चाहता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. सौन्दर्य बोध एवं भारतीय रूपंकर कला, शिव कुमार शर्मा (कला त्रैमासिक, सौन्दर्य बोध विशेषांक) अक्टूबर–दिसम्बर 2002, अंक– 31, पृ0सं0 11
2. जनता की कला के मायने और सन्दर्भ, डॉ0 ज्योतिष जोशी, पृ0सं0 20
3. समकालीनता के नये अर्थ, अवधेश अमन, समकालीन कला, अंक–17, मई–1996, पृ0सं0 48

4. भारतीय चित्रकला, वाचस्पति गैरोला, पृ0सं0 287
5. हमारी कला, उनकी कला, सुरेश सलिल, कला दीर्घा, अप्रैल 2006, वर्ष–6, अंक–12, पृ0सं0 33
6. जनता की कला के मायने और सन्दर्भ, डॉ0 ज्योतिष जोशी (कला दीर्घ अंक–12, पृ0सं0 20)
7. समकालीन भारतीय कला, ममता चतुर्वेदी, पृ0सं0 135
8. समकालीन भारतीय कला, ममता चतुर्वेदी, पृ0सं0 134
9. कला संस्कृति और मूल्य, डॉ0 सुरेन्द्र वर्मा, पृ0सं0 07
10. वर्तमान भारतीय कला और उसके दर्शक, डॉ0 राधा कमल मुखर्जी, (कला त्रैमासिक से श्रेष्ठ रचनाओं का संकलन), पृ0सं0 4
11. भारतीय कला सम्पदा और आज उसकी प्रासंगिकता, पी0चन्द्र विनोद, कला त्रैमासिक जुलाई से दिसम्बर–2001, संयुक्तांक–27
12. समकालीन कला और समीक्षा की चुनौतियाँ, सुशील त्रिपाठी, कला त्रैमासिक, अंक–32, पृ0सं0 42
13. भारतीय कला सम्पदा और आज उसकी प्रासंगिकता, पी0चन्द्र विनोद, पृ0सं0 21 (कला त्रैमासिक–संयुक्तांक 27
14. भारतीय कला सम्पदा और आज उसकी प्रासंगिकता, पी0चन्द्र विनोद, पृ0 21, कला त्रैमासिक संयुक्तांक–27
15. समसामयिक भारतीय कला परिवेश, रामकुमार, पृ0सं0 170, कला चिंतन (कला त्रैमासिक से श्रेष्ठ रचनाओं का संकलन)
16. भारतीय कला सम्पदा और आज उसकी प्रासंगिकता, पी0चन्द्र विनोद, पृ0सं0 21, कला त्रैमासिक, जुलाई से दिसम्बर 2001, संयुक्तांक 27
17. सौन्दर्य बोध एवं भारतीय रूपंकर कला, शिवकुमार शर्मा, कला त्रैमासिक, अक्टूबर–दिसम्बर 2002, अंक–31
18. लोक कलाओं में उर्जा की संजीवनी, प्रो0 नर्मदा प्रसाद गुप्त (भारतीय लोक कलाओं के विविध आयाम–सम्पादक अयोध्या प्रसाद गुप्त, 'कुमुद'), पृ0सं0 230
19. भारतीय कला सम्पदा और आज उसकी प्रासंगिकता, पी0चन्द्र विनोद, पृ0सं0 20, कला त्रैमासिक 2001, संयुक्तांक–27
20. लोककलाओं में उर्जा की संजीवनी, प्रो0 नर्मदा प्रसाद गुप्त 'भारतीय लोककलाओं के विविध आयाम', सम्पादक अयोध्या प्रसाद गुप्त, 'कुमुद' पृ0सं0 230